आचार्य से सेवा प्रदाता की भूमिका : एक अन्तहीन यात्रा

राजेश कुमार

हर युग में शिक्षकों और शिक्षा में उनकी केन्द्रीय भूमिका को मान्यता मिली है। लेकिन समय के साथ शिक्षकों की सामाजिक स्थिति और उनकी भूमिका में जो परिवर्तन आया है उस पर भी सहज ही ध्यान चला जाता है। पहले शिक्षकों को एक निर्विवाद गौरवपूर्ण स्थान प्राप्त था, जो यह जानते थे कि क्या पढ़ाना है और कैसे पढ़ाना है; लेकिन यह स्थिति बहुत पहले ही समाप्त हो चुकी है।[i] आज राज्य का आग्रह यह है कि शिक्षक की जवाबदेही के नाम पर शिक्षा में सार्वजनिक निवेश पर अधिकतम लाभ प्राप्त किया जाए जिसका इस्तेमाल शिक्षक की स्वायत्तता को धीरे-धीरे नष्ट करने के लिए किया गया है। राज्य ने शिक्षा की लागत का कुछ हिस्सा माता-पिता को सौंप दिया है और वे इस हद तक सशक्त हो गए हैं कि *'ग्राहक सन्तुष्टि'* जैसे वाक्यांश उपयोग में लाए जाने लगे हैं। नियमित शिक्षक के लिए लागू नियमों और शर्तों पर पैरा-शिक्षकों की नियुक्ति करके, राज्यों ने शिक्षकों के बीच सहानुभूति को नष्ट करने और असुरक्षा की भावना पैदा करने में सफलता पाई है, जिसके कारण उन्हें हतोत्साहित होकर आत्मसमर्पण करना पड़ता है और बिना किसी शर्त के हर आज्ञा माननी पड़ती है। इस वजह से हमारी शिक्षा प्रणाली, विद्यार्थियों और माता-पिता के मन में शिक्षण और शिक्षक की भूमिका के बारे में भी परिवर्तन आया है। ऐसे में यह जरूरी हो जाता है कि हम शिक्षकों के बारे में अपनी समझ पर पुनर्विचार करें।

आज हम एक ऐसे समय में रह रहे हैं जब हमारे नागरिक और सांस्कृतिक संस्थान घेराबन्दी में हैं और अमीर-गरीब के बीच का अन्तर बढ़ रहा है तथा इसके लिए शिक्षकों को दोषी ठहराया जा रहा है। अधिकांश विधायिकाएँ, जो लोगों की अपेक्षाओं को पूरा करने में नाकाम रही हैं, शिक्षण और शिक्षकों पर ध्यान केन्द्रित कर रही हैं। पाठ्यक्रम, पाठ्यपुस्तकों, शिक्षण विधियों, मूल्यांकन योजना, शिक्षक-शिक्षा आदि के नाम पर विभिन्न तरीकों और साधनों को *'अधिक जिम्मेदार और जवाबदेह'* बनाने की कोशिश की जा रही है।

इस सन्दर्भ में यह जानना उचित होगा कि ये शिक्षक कौन हैं, समाज में इनकी हैसियत क्या है, उनकी भूमिका क्या है या उनसे किस प्रकार की भूमिका निभाने की उम्मीद की जाती है। इन सवालों के विभिन्न जवाब मिलते हैं और कई नए सवाल भी सामने आते हैं जो इस बात का संकेत हैं कि शिक्षकों के बारे में हमारी बहुमुखी प्रणाली और सर्व साधारण की अवधारणा क्या है और समाज में उनकी भूमिका को किस तरह से देखा जाता है। व्यक्ति या समूह, विशेष सन्दर्भों में अपनी पसन्दीदा धारणा का उपयोग करते हैं। किसी शिक्षक के प्रयासों की कारणात्मक समझ ही शायद वह प्रेरक शक्ति है जो इस सारी समझ की जड़ में है। जिसके तहत यह मान लिया जाता है कि विद्यालय के स्नातक जो कुछ करते हैं या नहीं करते हैं उसका कारण यह है कि शिक्षक वैसा करते हैं या नहीं करते हैं।

शिक्षकों और उनकी भूमिकाओं की बहुमुखी प्रणालीगत और सार्वजनिक छवि को उन रूपकों के लेंस के माध्यम से भी देखा जा सकता है जो शिक्षण और शिक्षकों के लिए इस्तेमाल किए गए हैं। इस प्रकार के वाक्यांश कि - माली के रूप में शिक्षक[ii]; मुक्तिदाता के रूप में शिक्षक[iii]; माता-पिता के रूप में शिक्षक[iv]; अनुप्रयुक्त वैज्ञानिक के रूप में शिक्षक[v]; चिकित्सक के रूप में शिक्षक[vi] आदि दूरस्थ शिक्षण के द्योतक हैं और शिक्षक सार्वजनिक धारणा के मामले में आगे बढ़े हैं। हाल ही में इनके साथ कुछ और वाक्यांश भी जुड़ गए हैं जैसे चिन्तनशील अभ्यासी रूप में शिक्षक और एक पेशेवर रूप में शिक्षक आदि जिनका सामना भी करना पड़ता है। इन सबकी वजह से यह सवाल पूछना ही पड़ता है कि : ये शिक्षक कौन हैं? ये क्या करते हैं? जिन *'रूपकों से हम सहमत हैं और जिनका हम अनुसरण करते हैं'* वे बड़े व्यवस्थित और अनजाने तरीके से अपने और अन्य लोगों के सम्बन्ध में हमारी सोच, समझ-बूझ और आचरण का निर्माण करते हैं।[vii] आधुनिक समाज की बदली हुई वास्तविकताओं और उसके फलस्वरूप उत्पन्न सरोकारों के साथ ही शिक्षा से की जाने वाली अपेक्षाएँ भी बदल गई हैं जैसा कि उपर्युक्त रूपकों की शृंखला से स्पष्ट होता है। इस परिवर्तन को समझने के लिए हमें आँकड़ों/आधार के रूपक का प्रयोग करना होगा; क्योंकि किसी ऐसे ठोस आधार के बिना परिवर्तन की अवधारणा खोखली हो जाती है जिसके लिए हमें परिवर्तन को समझना है।[viii]

शिक्षकों की भूमिकाओं और स्थिति और उसमें हुए परिवर्तनों को समझना मुश्किल हो सकता है क्योंकि ऐसा करने के कई दृष्टिकोण हैं जैसे शिक्षकों के बारे में सामान्य धारणाएँ, या शिक्षा प्रणाली की धारणाएँ कि शिक्षक कौन हैं और उन्हें क्या करना चाहिए, या शिक्षाविदों - दार्शनिकों, मनोवैज्ञानिकों, समाजशास्त्रियों आदि - के शिक्षण और शिक्षकों के बारे में विचार। इसके अलावा शिक्षकों

की अपनी खुद की बदलती हुई छवि और स्थान भी है। ऐसे में अगर इन सभी आयामों को ध्यान में रखते हुए शिक्षकों की भूमिका तथा स्थान सम्बन्धी धारणा में हुए परिवर्तनों को समझने का कोई भी प्रयास किया जाए तो वह सफल नहीं हो पाएगा और अगर सुविधा और व्यवहार्यता के लिए केवल एक ही आयाम पर ध्यान देकर अन्य को अनदेखा कर दिया जाए तो इस स्थिति के लिए मेरे मन में सात दृष्टिहीन व्यक्ति और हाथी की कहानी आती है। यहाँ जो प्रयास किया गया है उसे इन दोनों तरीकों के बीच समझौते के रूप में देखा जा सकता है - सब पर विचार करना बनाम सबकी उपेक्षा करना सिवाय एक के - जहाँ शिक्षक की स्थिति पर फोकस है और एक या अधिक आयामों से होने वाले परिवर्तनों का उल्लेख किया गया है। आज 'शिक्षक' शब्द का जो भी मतलब है और वह जो भी संकेतित करता है, उसे उन परिवर्तनों के संचयी परिणाम के रूप में समझा जाना चाहिए जिन्हें हम ऊपर उल्लिखित विभिन्न लेंसों के माध्यम से देख सकते हैं। इस लेख में बदलती हुई प्रणालीगत और सार्वजनिक छवि और उसके परिणामस्वरूप शिक्षण और शिक्षकों की सामाजिक स्थिति का अध्ययन करने के लिए गुरु (आचार्य), कार्यनिर्वाहक, पेशेवर और विक्रेता (सेवा प्रदाता)[xi] के चतुर्भुजी ढाँचे का प्रयोग किया गया है जिसमें पहला *'आधार रूपक'* का कार्य करता है।

आज भारत में शिक्षकों को सदियों पुराने गुरुओं (आचार्य) का वंशज नहीं कहा जा सकता, लेकिन शिक्षकों की चर्चा, सार्वजनिक वार्ता और सामाजिक अपेक्षाओं में इस पुरानी भावुक याद को स्पष्ट रूप से देखा जा सकता है। इस सबका प्रभाव तब देखने में आता है जब अधिकारीगण शिक्षकों की भूमिका और स्थान की तो सराहना करते हैं पर मौजूदा शिक्षक समूह को कमतर बताते हैं। आजकल के शिक्षक और उनका शिक्षण कभी भी गुरुओं का स्थान नहीं पा सकता। क्योंकि उनमें न तो गुरुओं जैसा ज्ञान और आध्यात्मिक/प्रेरक गुण हैं, और न ही समाज और शिक्षा प्रणाली बच्चों और उनकी शिक्षा को पूरी तरह से शिक्षकों पर छोड़ने के लिए तैयार है जैसा कि प्राचीन काल में होता था कि जब शिष्य समाज से दूर रहकर अपनी शिक्षा की पूरी अवधि गुरु के साथ ही बिताते थे (ब्रह्मचर्य)। पर आज शिक्षक की ऐसी स्थिति न तो अस्तित्व में है और न ही ऐसा करना सम्भव है। इससे सिर्फ यह होता है कि शिक्षक अपने आप को दोषी महसूस करने लगते हैं कि वे अपने पेशे को नीचा दिखा रहे हैं जो कुछ हद तक पश्चिमी परम्परा के दृष्टिकोण की तरह है जो शिक्षण को एक पेशे के रूप में, एक आह्वान के रूप में देखता है। शिक्षकों द्वारा इस आह्वान के जवाब को ईश्वर का आह्वान, समाज का आह्वान और उनकी अपनी अन्तर-आत्मा का आह्वान समझा जा सकता है। *"पेशे की भावना का मतलब है दृढ़ संकल्प, साहस और लचीलापन, ये ऐसे गुण हैं जो शिक्षण को मात्र पेशे से कुछ अधिक मानते हैं और जिसमें हम कोई महत्वपूर्ण वस्तु अर्पित कर रहे होते हैं।"*[x]

ब्रिटिशकालीन भारत में शिक्षा राज्य का कार्य बन गई। यहाँ तक कि निजी स्कूलों को भी राज्य से मान्यता प्राप्त करनी पड़ी। स्कूल की व्यवस्था और पाठ्यपुस्तकें निर्धारित कर दी गईं जिनका पालन स्कूलों और शिक्षकों को बड़ी कड़ाई के साथ करना पड़ा। स्कूलों में जो काम होने चाहिए उन्हें सुनिश्चित करने के लिए निरीक्षकगण अक्सर स्कूलों का दौरा करते और उन्हें इस बात के लिए सन्तुष्ट करना जरूरी था कि सारे काम योजनानुसार चल रहे हैं। इसका नतीजा यह हुआ कि गुरु के रूप में शिक्षकों को जो स्वायत्तता प्राप्त थी, वह धीरे-धीरे कम होने लगी और उनके प्रति समाज के दृष्टिकोण में बदलाव आया क्योंकि अब वे आदरणीय, आत्म-संचालित ज्ञान-पिपासु और ज्ञान प्रदाता नहीं रहे। जो लोग शिक्षक की नौकरी कर रहे थे वे शायद ऐसा सिर्फ इसलिए कर रहे थे क्योंकि उन्हें इससे बेहतर कुछ और नहीं मिला। शिक्षकों को इस बात का डर लगा रहता था कि कहीं निरीक्षक से बुरी रिपोर्ट न मिल जाए और कहीं उनकी नौकरी न चली जाए। इसलिए वे निर्देशों के सच्चे पालनकर्ता बन गए क्योंकि निरीक्षक इस बात पर जोर देते थे कि इन निर्देशों का अक्षरशः और अंतरात्मा से पालन किया जाए।

आजादी के बाद शिक्षकों की कार्यनिर्वाहक वाली स्थिति और अधिक दृढ़ हो गई क्योंकि राज्य अपनी खुद की कार्यसूची या एजेंडा को आगे बढ़ाने के लिए शिक्षकों पर निर्भर करता है और उन्हें नियमित रूप से जिम्मेदारियाँ सौंपता रहता है। क्षेत्रों, भाषाओं आदि के नाम पर राष्ट्र निर्माण के कार्य को शिक्षकों का स्वाभाविक उत्तरदायित्व मानकर उन्हें ही सौंप दिया गया। पाठ्यचर्या, पाठ्यक्रम और पाठ्यपुस्तकों के निर्माण कार्य में शिक्षण समुदाय की प्रामाणिक और सार्थक भागीदारी की कमी है जिससे इस बात की पुष्टि हुई कि शिक्षक ऐसे कार्यनिर्वाहक बनकर रह गए हैं जिन्हें शिक्षा तन्त्र की इच्छाओं और आदेशों को पूरा करना है। इस तरह की प्रथाओं पर आर.टी.ई. 2009 द्वारा लगाए गए स्पष्ट प्रतिबन्धों के बावजूद आज भी इस तरह की बातें परोक्ष और अपरोक्ष रूप से चल रही हैं।

शिक्षा सम्बन्धी मुद्दों की जटिलता ने सुकरात और प्लेटो जैसे दार्शनिकों का ध्यान आकर्षित किया और 20वीं सदी में विश्लेषणात्मक दार्शनिकों ने अस्पष्टता से बचने के लिए[xi] इन तरीकों का इस्तेमाल किया जैसे विचारों का संकल्पनात्मक रूप से विश्लेषण करने की दार्शनिक प्रथाओं को अपनाना, तर्कों का ध्यानपूर्वक मूल्यांकन करना और सूक्ष्म विशिष्टताओं को सामने लाना ताकि शिक्षण और शिक्षकों की पेशेवर स्थिति प्रतिपादित हो सके।[xii]

स्वतंत्रता के बाद से लगातार हमारी नीति और राष्ट्रीय पाठ्यक्रम दस्तावेजों में शिक्षण और शिक्षकों के महत्व को समझने की बात कही गई है। 1948 से ही नीति निर्माता इस तथ्य को लेकर सचेत थे कि 'इस देश के लोगों को यह बात जरा देर में समझ आई है कि शिक्षा एक पेशा है जिसके लिए किसी भी अन्य पेशे की तरह गहन तैयारी आवश्यक है,'[xiii] और जैसा कि हाल ही में यानी 2010 में साफ शब्दों में कहा गया कि -'शिक्षण एक पेशा है और शिक्षक-शिक्षा शिक्षकों की पेशेवर तैयारी की प्रक्रिया है।'[xiv] इन दोनों कथनों के बीच पचास वर्षों से भी अधिक का समय अन्तराल है और ये हमें बताते हैं कि नीतिगत इरादों का क्या हुआ। एक तरफ तो शिक्षकों से राज्य के सभी प्रकार कार्य करवाकर उनकी कार्यनिर्वाहक वाली भूमिका को बरकरार रखा गया है और दूसरी तरफ निर्णय लेने में उनकी भागीदारी वाले कार्यों को - फिर चाहे वह नीति निर्माण हो, पाठ्यक्रम विकास हो और या स्कूल से सम्बन्धित अन्य महत्वपूर्ण मामले हों - जितना हो सके उतना न्यूनतम महत्व दिया गया है। ये दोनों बातें शिक्षकों को पेशेवर दर्जा दिलाने के प्रतिकूल हैं जबकि नीति के दस्तावेजों में उन्हें पेशेवर दर्जा दिलाने इच्छा प्रकट की गई है।

जब शिक्षकों के लिए 'पेशेवर' शब्द का प्रयोग किया जाता है तो उसमें शिक्षण और शिक्षक सम्बन्धी कई आवश्यक शर्तें और विशेषताएँ आ जाती हैं जैसे ज्ञान का सुव्यवस्थित भण्डार, शिक्षा के क्षेत्र में कार्यरत लोगों का समुदाय, सुनियोजित तैयारी आदि। इसका यह मतलब भी है कि शिक्षक एक महत्वपूर्ण सामाजिक सेवा प्रदान करते हैं और जिन युवाओं को वे पढ़ाते हैं उनके जीवन पर अधिकार भी रखते हैं। किन्तु *"वही व्यवस्थितता जो हमें किसी एक अवधारणा के सन्दर्भ में किसी अन्य अवधारणा के एक पहलू को समझने में सहायता देती है, अवधारणा के अन्य पहलुओं को अवश्य छिपाएगी।"*[iv] शिक्षकों के लिए 'पेशेवर' शब्द का प्रयोग करने से शिक्षण कार्य की जो अप्रत्याशित प्रकृति है वह छिप जाती है क्योंकि शिक्षण में जाहिरा तौर पर समान तरह के मुद्दों से निपटने के लिए भिन्न तरीकों का प्रयोग करना पड़ता है। शिक्षण की इस अप्रत्याशित प्रकृति के प्रमुख कारणों में से एक है इससे सम्बद्ध ज्ञान - इसमें उस विषय का ज्ञान तो शामिल है ही जिसे पढ़ाया/सीखा जा रहा है, पर उसके साथ में मनोविज्ञान, समाजशास्त्र आदि का ज्ञान भी आवश्यक है। ज्ञान के ये क्षेत्र विशेष ज्ञान के अत्यन्त चुनौतीपूर्ण क्षेत्र हैं जिनमें शिक्षक ज्ञान का निर्माता बनने का दावा नहीं कर सकते; वे तो केवल उस क्षेत्र के विशेषज्ञों द्वारा बताए और प्रतिपादित ज्ञान को प्रयोग में ला सकते हैं। इस प्रकार एक पेशेवर के रूप में शिक्षक का संकल्पनात्मक रूपक *" इन बातों को छिपा देता है कि शिक्षण में एक निरन्तर सम्बन्ध का भाव होता है जिसके केन्द्र में एक युवा का व्यक्तिगत विकास है, शिक्षण में बहुमुखी जवाबदेही सम्बन्ध निहित है और शिक्षण के ज्ञानाधार की प्रकृति सार्वजनिक होती है।"*[xvi] इस रूपक की अपनी सीमाएँ हैं लेकिन फिर भी अनेक शिक्षाविदों और इस क्षेत्र में कार्यरत लोगों ने इसके प्रयोग पर जोर दिया है। सम्भवतः इसलिए कि यह आलंकारिक भाषा साधन है और जिसके बारे में यह माना जाता है कि इसके प्रयोग से शिक्षक सक्षम और सशक्त बनेंगे।

शिक्षकों के बारे में एक धारणा और भी है और वह है एक विक्रेता की और उसे एक ऐसे व्यक्ति के रूप में देखा जाता है जो वेतन के बदले अपनी सेवाएँ प्रदान करता है। हालाँकि शिक्षकों का कार्य अन्य सेवा प्रदाताओं के कार्य से बहुत अलग है। सेवा प्रदाताओं को पता होता है कि उनके ग्राहक कौन हैं लेकिन शिक्षण कार्य में ऐसा नहीं है; उनके ग्राहक कौन हैं - बच्चे, माता-पिता, राज्य, उन्हें नौकरी देने वाले, या पूरा समाज - क्योंकि ये सभी किसी न किसी मायने में हितधारक हैं। इस प्रकार के परस्पर विरोधी हितों वाले अनेक ग्राहकों के कारण अक्सर शिक्षक के लिए यह तय कर पाना कठिन हो जाता है कि शिक्षण के कार्य में कैसे आगे बढ़ना है। बच्चों में अपनी अपेक्षाओं को स्पष्ट रूप से व्यक्त कर पाने की न तो समझ है और न ही स्वतंत्रता; हालाँकि बच्चों के हित एक सूचक का काम कर सकते हैं। इसके अलावा ग्राहक और सेवा प्रदाता के बीच सहमति का जो मौलिक सिद्धान्त है उसे ध्यान में रखते हुए बच्चे को ग्राहक के रूप में देखना ठीक नहीं है क्योंकि बच्चे अपनी सहमति नहीं दे सकते। बच्चे और माता-पिता के बीच शक्ति सम्बन्ध हमेशा माता-पिता के पक्ष में ही होता है। यद्यपि राज्य ने शिक्षा की लागत आंशिक रूप से माता-पिता को सौंप दी है, फिर भी वित्तीय प्रबन्धन उसके हाथ में ही होने के कारण शिक्षा और शिक्षकों पर उसी का दबदबा बना हुआ है। लेकिन चूँकि माता-पिता भी अपने बच्चे की शिक्षा के खर्चे को साझा कर रहे हैं, इसलिए इस बारे में उनकी माँग बढ़ती जा रही है कि शिक्षक को क्या करना चाहिए और क्या नहीं। नियोक्ता शिक्षण पर बहुत सूक्ष्म लेकिन तीक्ष्ण प्रभाव डाल रहे हैं क्योंकि वे ही तो अपने शिक्षार्थियों को नौकरी दे रहे हैं- *'शिक्षा के कौशलीकरण'* पर जो जोर दिया जा रहा है उसे इसी सन्दर्भ में देखा जाना चाहिए। हम शिक्षकों की दुर्दशा को आसानी से समझ सकते हैं - अलग-अलग दिशाओं से होने वाली खींचातानी और दबाव के द्वारा उनकी धज्जियाँ उड़ाई जा रही हैं और साथ में शिक्षा और शिक्षण सम्बन्धी उनकी अपनी समझ से दुविधाएँ और बढ़ जाती हैं।

निष्कर्षतः यह कहा जा सकता है कि आज शिक्षक को कोई नाम देना मुश्किल है। सबसे पहले तो उनके पास समाज का वह विश्वास नहीं है जो गुरु के लिए आवश्यक है। दूसरे, माता-पिता इतनी ज्यादा माँगें कर रहे हैं कि वे कार्यनिर्वाहक नहीं हो सकते। तीसरे, पेशेवर होने के लिए जितना समय, संसाधन और स्वायत्तता आवश्यक है, वह शिक्षकों को नहीं मिलती। चौथे, हितधारकों की बहुलता और उनके हितों की असंगति के कारण वे सेवा प्रदाता भी

नहीं हो सकते। अगर शिक्षकों को कार्यकुशल और प्रभावी होना है तो इस अस्पष्टता को स्पष्ट करना बहुत जरूरी है कि शिक्षक कौन हैं और उनका काम क्या है।

References

i Lortie, D. (1975). Schoolteacher. Chicago: University of Chicago Press.

ii Rabelais, F. (1553–1564/1991). Gargantua and Pantagruel. Raffel, B. (translated). New York: Norton & Company.

iii Rousseau, J. (1762/1979). Emile: Or On Education. Bloom, A. (translated). New York: Basic Books.

iv Neill, A. S. (1960). Summerhill: A Radical Approach to Childrearing. New York: Hart.

v Piaget, J. (1969). Psychology and Pedagogy. Paris: Gontheir.

vi Rogers, C. (1969). Freedom to Learn: A View of What Education Might Become. Ohio: Charles Merill.

vii Lakoff, G. and Johnson, M. (2003). Metaphors We Live By. Chicago: University of Chicago Press.

viii Donnelly, J. F. (2006). Continuity, Stability and Community in Teaching. In Educational Philosophy and Theory. Vol. 38:3.

ix Kale, Pratima (1970). The Guru and the Professional: The Dilemma of the Secondary School Teacher in Poona, India. In *Comparative Education Review. Vol. 40: 3.* 1970.

x Hansen, David T. (1994). Teaching and the Sense of Vocation. *In Educational Theory. Vol. 44: 3.*

xi Phillips, D.C. and Siegel, Harvey (2015). Philosophy of Education. In *The Stanford Encyclopedia of Philosophy*. Edward N. Zalta (ed.). http://plato.stanford.edu/archives/win2015/entries/education-philosophy/.

xii Calderhead, James (1994). Teaching as a Professional Activity. In Bourne, Jill & Pollard, Andrew (eds.). *Teaching and Learning in the Primary School.* London: Routledge.

xiii The Report of the University Education Commission, 1948-49. Chapter VII: C. Ministry of Education. Government of India, 1962. p. 183.

xiv National Curriculum Framework for Teacher Education (NCFTE) (2010). New Delhi: NCTE. p. 15

xv Lakoff, G. and Johnson M. (2003). op. cit. p. 10.

xvi Maxwell, Bruce (2015). 'Teacher as Professional' as Metaphor: What it Highlights and What it Hides. *In Journal of Philosophy of Education. Vol. 49:1. p. 101.*

राजेश कुमार जयपुर में अज़ीम प्रेमजी फाउण्डेशन की राजस्थान स्टेट इंस्टीट्यूट टीम के सदस्य हैं। उन्हें शिक्षा के क्षेत्र में 25 वर्ष से अधिक का अनुभव है। फाउण्डेशन में आने से पहले वे जयपुर के दिगन्तर शिक्षा एवं खेलकूद समिति के द एकेडेमिक रिसोर्स यूनिट (TARU) में कार्यकारी निदेशक के रूप में कार्यरत थे। उन्होंने अरुणाचल प्रदेश के विभिन्न सरकारी कॉलेजों में लगभग 20 वर्ष और यमन गणराज्य के साना विश्वविद्यालय में अँग्रेजी भाषा और साहित्य का अध्यापन किया। उन्होंने स्नातक और स्नातकोत्तर दोनों कोर्स पढ़ाए तथा स्नातकोत्तर व डॉक्टरेट शोध प्रबन्धों का पर्यवेक्षण किया। उनकी कई रचनाएँ प्रकाशित हो चुकी हैं। उन्होंने तिलका मांझी भागलपुर विश्वविद्यालय, बिहार से अँग्रेजी में स्नातकोत्तर (भाषा विज्ञान में विशेषज्ञता के साथ) डिग्री और अँग्रेजी भाषा शिक्षण में पीएच.डी. की उपाधि प्राप्त की है। उनसे rajesh.kumar1@azimpremjifoundation.org पर सम्पर्क किया जा सकता है। **अनुवाद :** नलिनी रावल